संगीत शिक्षा प्रचार - कलात्मक या तांत्रिक ?

प्रतिभावान गायक कलाकार प्रभा अत्रेजी के पुरस्कार वितरण समारोहमें, आदरणीय राज्यपाल महोदयने अपने भाषणमें संगीत शिक्षाकी दुरावस्थाके बारेमें जो चिंता एवं आस्था दिखाई, उसीके चलते कुछ विचार करने हेतु यह लेख का प्रयोजन हैं । संगीत कला नष्ट होनेकी राज्यपाल महोदयकी चिंता बिलकुल अंतर्मुख कर देनेवाली एवं सार्थ लगी । विदयालयीन संगीत प्रचार तथा प्रसार करनेवाली आजकी संगीत संस्थाए 'कलात्मक' तथा 'तांत्रिक' इन अंगोमेंसे किसे कितना महत्त्व देती हैं, इसमें इस चिंता एवं दुरावस्थाके कई सवाल और जवाब छिपे हुवे हैं । आईए, इसीपर आधारीत चर्चा करते हैं ।

महाराष्ट्र राज्य, संगीतकी समृध्द कलाभूमीका प्रदेश कहलाता हैं । यहॉ कई कलाकार और गुरुओने संगीत कला जिवित रखनेकी जिम्मेदारीको, अपना जीवनकार्य समझकर अपनाया । संगीत कला एवं शिक्षा प्रसारही उनकी जीवनशैली बन गई थी । संगीत परंपराके तत्त्वोंको दूरदृष्टीतासे समझने एवं समझानेवाला वह बुध्दिजीवी, विद्वान वर्ग अब समाजमें नही रहा ऐसे प्रतीत होता हैं । इसीके परिणामस्वरुप, आज संगीत कलाशिक्षाकी दुरावस्था हमें दिखाई पड रही हैं । यदी हम संगीत विषयको शिक्षाप्रणालीका अंग समझकर, विदयार्थिओंका व्यक्तीत्व तरल एवं संवेदनशील बनाना चाहते हैं, कलाकार बनानेकी उनकी क्षमताको विकसित करना चाहते हैं, तो शिक्षाप्रणालीके प्रारंभिक स्तरसेही इस अनूठी कलाको बचानेके उपयोंपर, गंभीरतापूर्वक चिंतन करना होगा । यह चिंतन, वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें कार्यरत विद्वानोद्वारा, विदयालयोंकी शिक्षाके आयामोंको परिपक्वतासे समझनेवाले अध्यापकोद्वारा, एवं नए पिढीके संगीत विशेषज्ञोंद्वारा होनेकी अपेक्षा संगीतक्षेत्र रखता हैं । हमें सोचना होगा क्या इस चिंतन प्रक्रियाका हम हिस्सा बन सकते हैं ? हमारे विद्वानोंने हमारे हाथो जो संगीत प्रचारके आदर्श सौपे हैं, क्या उसीके आधारपर हम आज चल रहे हैं ? तंत्रात्मकतासे प्रभावित हो चुका हमारा संगीत कलाके बुनियादी तत्त्वोंको संम्भाल पा रहा हैं या नही ? प्रयास तो सभीके अच्छेही होते हैं, लेकीन क्या वह प्रयास सही दिशामें चल रहे हैं ? सोचना होगा ।

वास्तविक, संगीत कला एक 'एकात्मिक कला' हैं । लेकीन दुर्भाग्यवश, यह एकात्मिकताही खंडित हो चुकी हैं । संगीत कला अलग अलग दायरोंमें बट गई हैं । पाठयक्रम सिखानेके नीतीमें समानता नही हैं । हर दायरा, अपने मनचाहे विभागोंमें बटकर, अपनी अपनी मर्जीनुसार कार्य कर करा हैं । आज शिक्षा प्रणालीद्वारा निर्देशीत संगीत अलग, संगीत विदयालयोमें प्रत्यक्ष सिखाया जानेवाला संगीत अलग, गुरुके द्वारा सिखाया जानेवाला मौखिक संगीत अलग, पारंपारीक संगीत अलग, ऐसा बिखरा हुवा कलाचित्र दिखाई देता हैं । बडे आश्चर्यकी बात तो ये हैं की मूलगामी संगीत विदया इन सभी विविधताओंसे अलग पड गयी हैं । वास्तविक शुरुवाती दौरमें यह विविधता नही थी, बल्की, संगीत कला सिखाने के लिए बनाए गए तंत्रके अलग अलग स्तर बनाए गए थे । लेकीन दुर्भाग्यवश, इनके उद्देशोंकी दिशाको ना समझनेसे, इन्ही तंत्रोके चुंगलमें आजका संगीत फस गया हैं । संगीतकी दुनियामें अलग अलग प्रकारसे सिखानेके विविधतापूर्ण तंत्र इतने हावी हो गये हैं की संगीत कलाका शुध्द रुप लुप्त होता जा रहा हैं । संगीतमेंसे 'कला एवं विदया' लुप्त होती जा रही हैं और संगीत, अब बस एक तकनिकी औपचारीकता के आधारपर बचनेकी नाकाम कोशिश कर रहा हैं ।

इसका दुसरा अर्थ यह हैं, शायद शुध्द संगीतकलाके प्रचारका हमारा तरीका एवं शिक्षानीती गलत हो सकते हैं, जिसपर पुनर्विचार होना चाहिए । इस विषयमें मैने आदरणीय राज्यपाल महोदयजीको पत्र लिखा हैं, उनमेसे कुछ मुद्दे आप विद्वान पाठकोंके सामने भी रखना चाहता हूँ । शिक्षानीती अपनानेवाली, आजकी संगीत सीखनेवाली पीढीका मानसिक संक्रमण किस दिशामें हो रहा हैं इसका अभ्यास करना होगा । उनकी रुची क्या हैं, इससे हमें कोई मतलब नही रखना चाहिए, क्योंकी कलाके शुध्द मूल्योंको किसीके रुचीनुसार बदला नही जा सकता । इसिलिये, संगीतके मूलगामी तत्त्वोंके अभ्यासकी रुची बढे इसपर हमे प्रयास करने हागे । आजकी शिक्षाप्रणालीने संगीतके कलामूल्योंको को ठीकसे समझा हैं या नही इसपर विद्वानोंद्वारा चर्चा होनी चाहिए । अलग अलग पहलुओंको नासमझीसे एकत्रित कर देनेसे संगीत कलाकी खास विशेषताओंको हमने खो दिया हैं, और, अब जो बचा हैं, वह केवल साधारणसा संगीत हैं, जिसमें कलाशुध्दताके अभावके कारण कई बार उसे भारतीय संगीत कहनाभी उचित है या नही यह समझमें नही आता ।

संगीत कलाको एक वस्तुके तौरपर अलग अलग विभागोंमें बॉटनेकी बजाय, उस कलाके उपभोक्ताओंको अलग अलग स्तरमें बॉंटना चाहिए । विदयार्थि तथा कलाकार, शिक्षक तथा गुरु, शिक्षा प्रणाली तथा परंपरा, शिक्षा तंत्र तथा विदया, इस प्रकार अलग अलग पहलुओंपर विचार होना जरुरी हैं, तभी हम संगीत शिक्षाके अलग अलग स्तरपर उचित कार्य कर सकते हैं । प्रशासनिक तौरपर शिक्षाप्रणालीमें संगीत, चित्रकला, आदी कलाओंको हम अनिवार्य समझते हैं, यह बात तो ठीक हैं, लेकीन उन कलाओंमें छिपे हुए कलामूल्योंको हम कितना महत्त्व देते हैं यह विशेषज्ञोंद्वारा सोचनेकी बात हैं । संगीत सिखानेवाले अध्यापक एवं शिक्षकोंमेंही कलामूल्योंसे जुडे हुए दूरदृष्टीताका अभाव होना यह इस विषयमें सबसे बडी समस्या हैं । संगीतका अध्यापक वर्ग आज जिस प्रकार संगीत सिखानेका कार्य कर रहा हैं, उस कार्यका संगीत विदयासे या फिर कलामूल्योंसे कोईभी संबंध मालूम नही पडता । संगीत यह केवल एक तंत्र नही हैं, नाही पाठयक्रम की औपचारीकता । लेकीन ना जाने ऐसी कौनसी विवशता हैं, जो संगीत कलाको बेजान माहोलमें घसीटे चली जा रही हैं । शिक्षाप्रणालीमें संगीतके संबंधमें जो पाठयक्रम निश्चित किये जाते हैं, उन्हे कितनी गंभीरतापूर्वक लिया जाता हैं इसपर विचार होना आवश्यक हैं । पाठयक्रम यह कलाका वाहक होता हैं यह ध्यानमें रखते हुए, मूल विचार और कलात्मकताको दूरदृष्टीतासे समझनेवाले विद्वानोद्वारा कलाप्रचारके कार्यान्वयनको पुनर्गठन होना बहोत जरुरी हैं । कलाको एक कलाकार एवं अच्छे गुरुके अलावा कोईभी ठीकसे नही जान सकता, इसिलिए, संगीत कलाशिक्षा कार्यान्वयनकी दिशा निश्चित करने हेतू कलाके भविष्यको दूरदृष्टीतासे देखनेवाले गुरु, तज्ञ, विशेषज्ञ, विद्वानों एवं कलाकारोंका संगठन होना आवश्यक हैं । यह संगठन अगर कार्यकी दिशा निश्चित करता हैं, तो संगीत कलाशिक्षाके प्रचारमें नयी जान आ सकती हैं ।

कला को तंत्रसे अलग समझकर अगर हम 'कलाके' रुपमेंही मानते और अपनाना चाहते हैं तो, शिक्षा प्रणालीसे सीखे हुए विदयार्थीओंकी कलाकार बननेकी क्षमतापर विशेष ध्यान देना होगा । विदयार्थिओंकी प्राथमिक कलावस्थाकी परवरीश अगर उचित हो, तो आगे चलकर उसे कलाकार बननेके लिए प्रोत्साहित किया जा सकता हैं, और यदी अगर प्रारंभसेही उसे साधारण तकनिकी चुंगलमें फसाया जाए, तो उसके कलाकार बननेकी कोईभी संभावना शेष नही रह जाती । तकनिकी औपरचारिकतासे हटकर विदयार्थिको ललित कलाके अंगोका ज्ञान करवानेकी क्षमता अध्यापकोंमें

चाहिए, अगर क्षमता नही हैं, तो उदारतापूर्ण दृष्टिकोणसे अपने विदयार्थीको अच्छे गुरुसे तालिम दिलानी चाहिए ।

संगीत प्रसारके आरंभमें ''शिक्षाप्रणालीसे पढलिखकर कोई गवय्या नही बन सकता'' इस कलाविद्वानोद्वारा उठाई गयी आलोचनापर संगीतोध्दारक पं. विष्णु दिगंबर पलुस्करजीने, अपने संगीत प्रसारका उद्देश्श स्पष्ट करते हुवे जवाब दिया था की ''मैं अपनी संगीत शिक्षा प्रणालीद्वारा तथा पाठयक्रमद्वारा तानसेन नही, कानसेन निर्माण करना चाहता हूँ'' । मेरे विचारमें उस समय इस पहले विधानसे विद्वानोंको बडी तसल्ली मिल गई होगी । क्योंकी एक तरहसे पंडीतजीने विद्वानोंकी आलोचना स्वीकार ही कर ली थी । लेकीन पंडितजीने आगे जाकर अपने दुसरे विधानमें यह भी कहा था की, ''अच्छा कानसेनही आगे चलकर तानसेन बन सकता हैं''।

दुर्भाग्यवश, उनका यह दुसरा विधान पुरोगामी एवं प्रतिगामी विचारधाराओंद्वारा गंभीरतापूर्वक नही लिया गया । इतनही नही, पहलेही विधानका बहोत गलत अर्थ लगाया गया । पाठयक्रम प्रणालीसे जुडी हुई एक तंत्रप्रीय धारा यही मान बैठी के, हमारा मकसद, तानसेन बनाना नही, केवल कानसेन बनानाही हैं । संगीत तंत्रके प्रचार अंगकोही मुख्य अंग मानकर एक तरहसे ऐसे वर्गने संगीत के कलामूल्योंसे अपना नाता तोड लिया । वही एक दूसरी कलाप्रीय धारामें जबतक प्रचारके कलात्मक संगीत विदयाके मूलभूत तत्त्व तथा 'कलात्मकता' मौजूद थी तबतक तो ठीक था, लेकीन मंजीलतक पहुँचनेवाले बहोत कम निकले । आगे चलकर विदयार्थीकी तानसेन बनने की क्षमताको किसने जाना और कहाँतक पहचाना यह सवाल खडा होता हैं । तंत्रप्रीय धाराद्वारा तकनिकी अतिरेकसे विदया इतकी बेरुखी और बेजान होती गयी की, तानसेन तो दूर, हम कानसेनभी ठिकसे निर्मित कर नही पाये । कानसेन बनानेकी पंडितजीकी जो प्रतिज्ञा सफल होती नजर आ रही थी, वह आजके युगमें धुंदलीसी हो गयी हैं । एक बडे समाजमें आधा अंग स्वस्थ लोगोंका हो और आधा क्षयके रोगीयोंका हो, तो क्षयके रोगीयोंके सुधारनेकी संभावना कम और स्वस्थ लोगोंका स्वास्थ बिगडनेकी संभावना ज्यादा होती हैं ।

दुर्भाग्यवश पाठयक्रमपर आधारीत शिक्षाप्रणालीसे 'पढलिखकर कोई गवय्या नही बन सकता' यह तत्कालीन समालोचकोंकी आलोचनाभी सही साबीत हुवी और हो रही हैं । क्या इसका अर्थ यह हैं की, पंडितजीने कानसेनोंका वर्ग बढानेके लिये तानसेनोंके वर्गकी ओर अनदेखी की ? या फीर पंडितजीके विधान का अर्थ ना समझनेसे संगीत क्षेत्रका एक बडा हिस्सा संगीत विदया एवं कलाकी क्षतीके लिये जिम्मेदार हैं ? विदयालयीन संगीत पध्दतीपर आजतक जो आलोचना होती चली आ रही हैं, उसके लिये जिम्मेदार कौन हैं ? उस आलोचना का हल हमारे पास हैं या नही ? सचेतन संगीत 'कला' एक तरफ और बेजान, बेरुखा 'तंत्र' दुसरी तरफ, इनमेंसे महत्त्व किसे दिया जाना चाहिए ? आज कितने संगीत शिक्षक विदया समझनेवाले कलागुरु हैं ? पाठयक्रम नीतीपर कला अंगसे कैसे और कितना विचार होता है ? ऐसे बहोत सारे सवाल नए पिढीका प्रतिनिधी होनेके नाते मुझे सताते हैं । अर्थात, यह सवाल खडे करते समय मेरे सामने सम्मानजनक अपवादभी है, जो सही कलानिष्ठासे कार्य कर रहे हैं, लेकीन ऐसे अपवादोसे सत्य तो नही बदलता । यहाँपर किसीपरभी आलोचना करनेका हेतु नही हैं, ना तो वह मैं मेरी काबिलियत समझता हूँ, लेकीन संगीत प्रचारके वाहक होनेके नाते हम किस मोडपर खडे हैं इसपर विमर्श होना आवश्यक लगता हैं ।

मैं अभीभी मानता हूँ की शिक्षाप्रणालीमें सिखाया जानेवाला संगीत कलाकार निर्माणके लिये नही हैं, बल्की वह केवल पहचानकी तौरपर, केवल रुची बढानेके लिये हैं । लेकीन, कलाकार बनने की शुरुवात तो यही शिक्षाअवस्थामें होती हैं । नींव ही अगर कमजोर हो तो उसपर राजमहल कैसे खडा हो पाएगा ? कलाकी पहली पहचानही अगर बेजान, भ्रमीत और गलत हो, तो प्रारंभिक पहचानसे उभरकर कलाकी क्षमताए निखारना लगभग मुष्किलही होगा । संगीत यह गानेबजानेकी विदया हैं या फीर लिखनेपढने की, इसे समझकर किस पक्षको कितना महत्त्व देना चाहिए यह समझनेवाले विद्वानोंद्वारा प्रसारकी दिशा सुनिश्चित करना आवश्यक हैं । इसी दिशामें अध्यापकोंको संगीत प्रचार अनुशासित करना होगा । लिखने पढनेके आधारकोही हम अगर मुख्य विदयाका अंग समझ बैठे तो कलाका कलाके रुपमें जीवीत रहना संभवही नही । लिखनेपढनेसे हम कलाकी तिजोरीका ताला जरुर खोल सकते हैं, लेकीन उस चाबीकोही तिजोरी समझ बैठना मूर्खता होगी । संगीत शिक्षा प्रणालीको समझबुझकर कार्यान्वीत करना यही समझदारी हैं । कला सिखानेके लिए हमारे विद्वानोंने तंत्र बनाया यह कितनी बडी बात हैं । लेकीन तंत्रको घसीटते हुवे कलामूल्योंसे दूर ले जाना इसमें कौनसी समझदारी हैं ? बेजान और भ्रष्ट रुपमें सिखाई गयी कला हमारी नई पीढीमें संगीतके प्रती रुची कैसे बढा सकती हैं ? बहोत बडे चिंताजनक आश्चर्यकी बात हैं, की शास्त्रीय संगीतको छोड भागनेवाली हमारी आजकी पिढीको हम काबूमें नही रख पा रहे । यह आजके सभी संगीत प्रचारकोंकी सबसे बडी विफलता हैं । पिढली पीढीने जो कलाधरोहर हमें सौपी हैं, उसे सम्भालना तो दूर, हम उसका अर्थभी समझ नही पा रहे हैं । कारण एकही मालूम पडता हैं, विद्वानोंका अभाव । इन परिस्थितीओंमें संगीत विदयाके प्रचार का भविष्य, केवल राज्यपाल महोदयकोही नही, बल्की सारे कलापालोंकोभी चिंताजनक लगता हैं । तंत्रमलिनतासे मुरझा गयी अपनी संगीत कलाको संजिवनीकी आवश्यकता हैं ।

संगीत शिक्षाकी प्रारंभिक अवस्थासेही विदयार्थीसे 'आवाज का अभ्यास एवं स्वतंत्र आवाजसाधना' करवायी जानी चाहिए । गायन हो या वादन, उसके प्रकटीकरणके एकमात्र साधन 'आवाज' के अभ्यास का अभाव यह भारतीय संगीतकी आजतककी सबसे बडी कमजोरी है, जिसपर विचार कर, सभी दुनियाभरमें सिखाया जानेवाला 'आवाजशास्त्र' यह विषय भारतमेंभी सभी विदयार्थिओंको सिखाया जाना चाहिए । इस आधुनिक विषयके अंतर्भावके लिए कोईभी प्रयास नही किये जा रहे, तो आजकी संगीत शिक्षा मजबूती कैसे पकड सकती हैं ? आविष्कारके तौरपर हमारा गायन समृध्द हैं लेकीन जिस आवाजमें हमारे विदयार्थी सीख रहे हैं उस आवाजको उन्हे कमसे कम ठिकसे जान लेना चाहिए । इस मकसद से पलुस्कर महाराजने अपने शिष्य प्रो. बी.आर.देवरधरजी को आवाजकी विदया सिखनेके लिये लंदन भेजा था । देवधरजीने आवाजसाधना क्षेत्रमें कुछ हदतक कार्यभी किया, लेकीन उनके आगे आवाजके स्वतंत्र अभ्यासकी इस परंपराको किसने चलाया ? आश्चर्यकी बात हैं की आवाजका विषय शारीरिक होनेपरभी उसे मानसिक तौरपर अपनाया जा रहा हैं, जो गायनक्षेत्रके आविष्कारको आगे बढने नही दे रहा । अपवादके तौरपर गत बारा सालोसे संगीतभूषण अकादमी आवाजके क्षेत्रमें कार्य कर रही हैं । इस अकादमीमें आवाजका स्वतंत्र अभ्यास करवाया जाता हैं । प्रो. देवधरजीके बाद इस अकादमीके निर्माता पं. राजेन्द्र मणेरीकर ऐसे पहले कलाकार एवं आवाज विशेषज्ञ हैं जिन्होने लंदनमें रहकर आवाज विदयाके सभी पहलुओंका विस्तृत अध्ययन किया और भारतीय संगीतमें आवाजविदयाको कार्यान्वित करनेके लिये आवाज शिक्षाका एक सालका स्वतंत्र पाठयक्रम बनाया । अकादमीद्वारा यह पाठयक्रम कई जगह सिखाया

जाता हैं । आवाजके स्वतंत्र अभ्याससे, गायक कलाकार अपनी नादमधुर आवाजकी अनुभुतीसे अपने समृध्द कलाआविष्कारको श्रोताओंके सम्मुख बडे आनंदसे रख पाते हैं । गायन क्षेत्रमें शुरुवाती दौरसेही किसीको अगर अपनी कलाको मांझना है, आवाज नादमधुर बनानी हैं, तो आवाजके स्वतंत्र अभ्यासको कोई विकल्प नही हैं । तंत्रात्मक गायन सिखनेके बाद कलात्मक गायनकी और बढनेका यह पहला कदम मैने बारा साल पहले बढाया । मैने आवाजकी विदया इसलिये सिखी क्योंकी मेरी आवाज लगभग चली गई थी । आवाज लगानेके गलत तरीकेसे मुझे संकटकी खाईमें डाल दिया था, लेकीन आवाजके स्वतंत्र अभ्याससे मानो मेरा पुनर्जन्म हुवा । मेरी आवाजके दर्शनसे मुरझाई हुवी मेरी गायन कला फिरसे नए उल्हासके साथ सचेतन हो उठी । इतनाही नही, इस अभ्याससे मैं कई अनदेखे पहलुओंको पहचान पाया, जो की कलात्मकताके लिये बुनियादी हैं । श्रुतिविज्ञान का रहस्य क्या हैं, मिंड अंगोकी आलापी क्या हैं, एक सूर का दुसरे सूरमे घुलमिल जाना क्या हैं, ऐसे कई पहलूओंको मैं समझ पाया केवल आवाजके स्वतंत्र अभ्यास के कारण । इस विदयाके अध्यापनकार्यसे मै पिछले बारा सालसे जुडा हुवा हूँ, अगर कोई चाहे, तो विस्तृत जानकारी दे सकता हूँ । आवाजकी नादमधुरता को अगर हमने जान लिया, तोही गायनमें बसे आनंद का हम वास्तविक अनुभव कर सकते हैं । तंत्रात्मकतासे कलात्मकताकी ओर यह पहला कदम उठाना सभीके लिये आज बेहद जरुरी हो गया हैं ।

आवाजके स्वतंत्र अभ्यासका पाठयक्रम एवं इसकी पदविका, गायनक्षेत्र के विकासमें इस पिढीकी यह बहोत बडी कामयाबी हैं ऐसे मै मानता हूँ । इसी अभ्यास को सामने रखकर गायन अभ्यासकी शुरुवात आवाज अभ्याससे हो इसपर विचार होना आवश्यक हैं, तभी घडीके उलटे काटोंको सिधे घुमाया जा सकता हैं ।

विदयार्थिओंके मानसिक और भावनिक विकासके लिये संगीत कलाका शिक्षाप्रणालीमें अंतर्भाव होना यह केवल प्रारंभिक, साधारण और आम बात हैं, लेकीन वह कलाका 'लक्ष्य' नही हो सकता । 'कलाकार निर्माण', इससे अलग, असाधारण और खास बात हैं, और वही कलाका अंतिम लक्ष्य हैं, इस बातको संगीतके विद्वान पंडीत आजभी मानते हैं । हमें अब यह स्वीकार करना होगा की संगीतका अध्यापक बाकी शिक्षाप्रणालीके अध्यापकोसे अलग होना चाहिए । उसकी नजर कलात्मकतासे अभिन्न रुपसे जुडी होनी चाहिए । कलाको जीवीत रखनेके ध्येयके प्रती वह सदैव सजग होना जरुरी हैं । किसीभी विदयार्थीके कलागुणोंकी परीक्षा कर, उनकी क्षमता सही रुपमें विकसित करनेमे पुरी संगीत प्रचार धाराको सहयोगी बनना पडेगा । अगर इस दिशामें काम होता हैं, तो आदरणीय राज्यपाल महोदयने संगीत कलाकी दुरावस्थापर उठाए हुवे सवालोंपर हल जरुर ढूंढा जा सकता हैं ।

सचिन चंद्रात्रे, नासिक